जनसत्ता

हमला और चुनौती

चुनाव से ठीक पहले छत्तीसगढ़ के दंतेवाड़ा में माओवादियों ने भाजपा विधायक और चार पुलिस वालों को मार कर यह संदेश दिया है कि भारत की लोकतांत्रिक प्रक्रिया, चुनावी व्यवस्था में उनका कोई भरोसा नहीं है और वे हिंसा का रास्ता छोड़ने को तैयार नहीं हैं। पिछले एक हफ्ते के दौरान माओवादियों ने लगातार ऐसे हमले करके अपनी ताकत दिखाने और मौजूदगी दर्ज कराने की कोशिश की है। चार अप्रैल को माहला के जंगल में सीमा सुरक्षा बल के गश्ती दल पर हमला किया गया, जिसमें चार जवान शहीद हो गए थे। पांच अप्रैल को धमतरी जिले में सीआरपीएफ पर हमला हुआ और एक जवान शहीद हो गया। छह अप्रैल को माओवादियों ने प्रधानमंत्री की रैली से ठीक पहले एक विस्फोट किया। सात अप्रैल को राजनांदगांव में मुख्यमंत्री की सभा से पहले भी विस्फोट हुआ। इसके बाद दंतेवाड़ा में हमला हो गया। हालांकि यह कोई नई बात नहीं है। चुनाव के वक्त माओवादी ऐसे हमले करते रहे हैं। छह साल पहले झीरम घाटी में कांग्रेस कार्यकर्ताओं के एक काफिले पर ऐसा ही भीषण हमला किया गया था जिसमें प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष नंद कुमार पटेल, उनके बेटे और कांग्रेस के वरिष्ठ नेता विद्याचरण शुक्ल सहित तीस से ज्यादा लोग मारे गए थे।

माओवादियों ने मंगलवार को दंतेवाड़ा में भाजपा विधायक भीमा मंडावी के काफिले पर जो हमला किया उसका मकसद भी बस्तर इलाके में चुनाव प्रक्रिया को बाधित करना रहा है। वे किसी भी कीमत पर चुनाव नहीं होने देना चाहते। मंडावी इस इलाके में चुनाव प्रचार में जुटे थे। प्रचार खत्म होने के ठीक पहले वे जनसंपर्क के लिए श्यामगिरि पहुंचे जहां सालाना मेला चल रहा था। वहां लोगों से मिले। यहीं नक्सलियों ने उन्हें पहचान लिया और उनके लौटने वाले रास्ते में बारूदी सुरंग लगा दी। विस्फोट इतना जबर्दस्त था कि मंडावी की बुलटप्रूफ स्कॉर्पियो दो सौ मीटर दूर गिरी और तीन टुकड़े हो गए। हालांकि मंडावी के साथ छत्तीसगढ़ पुलिस का पचास जवानों का पूरा दस्ता चल रहा था, लेकिन हमले की भनक किसी को नहीं थी। यह हमला बता रहा है कि माओवादी पहले से ही ऐसे हमले की तैयारी में थे, बस मौके का इंतजार था।

केंद्र और राज्य सरकार माओवादियों के सफाए के भले कितने दावे करती रहें, लेकिन माओवादी आज भी पूरी ताकत के साथ मैदान में हैं। अपने इलाकों में उनका पूरा कब्जा है, और सबसे बड़ी बात यह कि उनका मजबूत खुफिया नेटवर्क है। पल-पल की खबर उन्हें रहती है। वरना ऐसे बड़े हमलों को अंजाम देना संभव नहीं होता। हालांकि कहा जा रहा है कि इस हमले के बारे में सत्ताईस खुफिया सूचनाएं थीं और स्थानीय थाना प्रभारी ने मंडावी को आगाह भी किया था। लेकिन उन्होंने इसे नजरअंदाज किया और सर्वाधिक खतरे वाले इलाके में चले गए। दरअसल, छत्तीसगढ़ के बड़े इलाके में फैले माओवादी अपनी समांतर सत्ता चला रहे हैं। वरना कैसे जीपीएस, वायरलैस जैसे उपकरण, बारूदी सुरंग के लिए विस्फोटक और अत्याधुनिक हथियार उन तक पहुंच रहे हैं। पिछले दो दशकों में माओवादी हिंसा में करीब बारह हजार लोग मारे जा चुके हैं जिनमें करीब तीन हजार पुलिस और सुरक्षा बलों के जवान हैं। ऐसे में क्या माना जा सकता है कि बड़ी संख्या में माओवादियों ने हथियार डाल दिए हैं या माओवादी हिंसा में पहले के मुकाबले काफी कमी आई है। केंद्र और राज्य सरकार के ये सारे दावे खोखले साबित हुए हैं। जिस तरह माओवादियों ने इलाकों पर अपनी मजबूत पकड़ बना रखी है और बड़े हमलों को अंजाम दे रहे हैं उससे तो यही लग रहा है कि माओवादियों से निपटने में सरकार की नीतियां कामयाब नहीं रहीं।

कर का दायरा

दुनिया भर में इंटरनेट के विस्तार के साथ बहुत सारे मामलों के लिए इस पर निर्भरता जिस तेजी से बढ़ रही है, उसमें इसके नियमन का सवाल उठना ही था। खासतौर पर इसके कारोबारी पहलू पर पिछले कुछ समय से यह स्वाभाविक सवाल उठ रहे थे कि अगर कोई कंपनी इंटरनेट के जरिए अपनी गतिविधियों से भारी मुनाफा कमाती है तो वह नियम-कायदों और आर्थिक नियमन से अलग क्यों रहे! अब इस मुद्दे पर बहस के जोर पकड़ने के बाद फ्रांस ने इस दिशा में एक ठोस कदम उठाया है। सोमवार को फ्रांस के सांसदों ने गूगल, अमेजन, फेसबुक और एप्पल जैसी वैश्विक स्तर पर दिग्जज मानी जाने वाली कंपनियों पर एक नए कर डिजिटल टैक्स को मंजूरी दी। इसे 'गाफा' का नाम दिया गया है। यों इस मसले पर फ्रांस की ओर से यह कहा गया है कि उसे इस तरह के विषयों पर अगुआई करने में गर्व महसूस हो रहा है और यह मसौदा इक्कीसवीं सदी के लिए अधिक प्रभावी और निष्पक्ष कर प्रणाली की दिशा में एक कदम है, लेकिन इस घोषणा के साथ ही अमेरिका की ओर स्पष्ट रूप से नाराजगी सामने आ गई है। अमेरिका का कहना था कि यह योजना अमेरिकी कंपनी और इन डिजिटल मंचों का इस्तेमाल करने वाले फ्रांस के नागरिकों, दोनों को प्रभावित करेगा।

दरअसल, यह माना जा रहा है कि फ्रांस का यह कदम इस तथ्य के मद्देनजर सामने आया है कि डिजिटल क्षेत्र की बड़ी कंपनियां उपभोक्ताओं के आंकड़ों से भारी मुनाफा कमाती हैं। यहां तक कि फ्रांस में होने वाले लाभ पर विदेशों में कर लगाया जाता है। फ्रांस का कहना है कि यह 'अस्वीकार्य' है। फिलहाल यह टैक्स सीधी बिक्री पर नहीं लगाने के बजाय इंटरनेट प्लेटफार्म की ओर से उनके जरिए सामान बेचने पर लगाया जाएगा। इसके अलावा, अगर ये कंपनियां खास लक्षित समूहों के लिए दिखाए जाने वाले विज्ञापनों की सुविधा बेच कर राजस्व की कमाई करती हैं तो उसे भी कर के दायरे में माना जाएगा। यानी वस्तुओं का उत्पादन करने वाली कंपनी और ग्राहकों के बीच माध्यम का काम करने वाली अमेजन जैसी ऑनलाइन मार्केटिंग करने वाली कंपनियों पर अब टैक्स लगेगा। इस कानून के लागू होने के बाद फ्रांस सरकार को इस नए नियम से सालाना तकरीबन पचास करोड़ यूरो का राजस्व मिलेगा।

हालांकि फ्रांस के इस कदम का फिलहाल आर्थिक रूप से सबसे नकारात्मक असर अमेरिका पर पड़ने वाला है और यही वजह है कि अमेरिका ने फ्रांस से अभी इसे टालने का आग्रह किया था। इससे पहले न्यूजीलैंड सरकार ने गूगल और फेसबुक जैसी ऑनलाइन बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर अलग से टैक्स लगाने की घोषणा की थी। वहां सरकार का कहना था कि हमारी कर-प्रणाली में व्यक्ति करदाता और बहुराष्ट्रीय कंपनियों को एक जैसा ही देखा जाता है, जो सही नहीं है। जबकि ये कंपनियां ज्यादा कमाई करती हैं और कम टैक्स देती हैं। गौरतलब है कि दुनिया की कुछ सबसे अमीर कंपनियों को बेहद कम कर का भुगतान करने की सुविधा मिली हुई है। यह अपने आप में एक बड़ा सवाल है कि कोई कंपनी अपने कारोबार से अकूत कमाई करे, लेकिन उसे उस पर टैक्स का भुगतान न करना पड़े। माना जाता है कि दुनिया भर में खासतौर पर विकसित देशों में कर-प्रणाली के मामले में सख्त नियम-कायदे हैं। लेकिन आज भी अगर यह स्थिति बनी हुई है तो निश्चित रूप इन कंपनियों को कर संबंधी नए नियमों के तहत लाने की जरूरत है। फ्रांस के इस कदम को इसी आलोक में देखा जा रहा है।

कल्पमेधा

अपनी भूख सहने वाले तपस्वी की शक्ति
उतनी नहीं होती जितनी कि दूसरों की
भूख मिटाने वाले की शक्ति।
-तिरुवल्लुवर

मानसून के अनुमान का संकट

प्रमोद भार्गव

पिछले दस साल के आंकड़ों में एक भी साल भविष्यवाणी सटीक नहीं बैठी। इसलिए मौसम विभाग के अनुमान भी भरोसे के लायक नहीं होते। यदि किसान इन भविष्यवाणियों के आधार पर फसल बोए, तो उसे नाकों चने चबाने पड़ जाएंगे। चूंकि कृषि वैज्ञानिक भी मौसम संबंधी भविष्यवाणी के आधार पर किसानों को फसल उगाने की सलाह देते हैं, लिहाजा उनकी सलाह भी किसान की उम्मीद पर पानी फेरने वाली ही साबित होती है।

मौसम की भविष्यवाणी करने वाली एजेंसी स्काईमेट का बारिश का पूर्वानुमान सही निकलता है तो इस बार देश में अपेक्षाकृत कम बारिश होगी। सामान्य से कम बारिश होने का कारण जून से सितंबर के दौरान प्रशांत महासागर में अलनीनो का बनना है। नतीजतन, लंबी अवधि के औसत (एलपीए) के मुकाबले में मानसून नब्बे से पनचानवे फीसद रहने का अनुमान है। इन महीनों में औसत तिरानबे फीसद बारिश होगी, जबकि मई से जुलाई के बीच अलनीनो का छियासठ फीसद प्रभाव रहेगा, जो कम बारिश का कारण बनेगा। एलपीए वर्ष 1951 और 2000 के बीच की बारिश का औसत है, जो नवासी सेंटीमीटर है। साफ है, यह किसान और अर्थव्यवस्था के लिए अच्छी खबर नहीं है। इससे इस साल सूखे की आशंका बन सकती है। जून से सितंबर तक दक्षिण-पश्चिम क्षेत्र में सक्रिय रहने वाले मानसून पर आई यह पहली भविष्यवाणी है। इस भविष्यवाणी को करते हुए स्काईमेट ने दावा किया है कि यह उसकी दूसरी भविष्यवाणी है, जबकि हकीकत यह है कि स्काईमेट छह साल पहले से मानसून की भविष्यवाणियां कर रहा है। लेकिन सही साबित नहीं होने के कारण वह जनता के बीच भरोसा पैदा नहीं कर पाया है।

हर साल अप्रैल-मई में मानसून आ जाने की अटकलों का दौर शुरू हो जाता है। यदि औसत मानसून आए तो देश में हरियाली और समृद्धि की संभावना बढ़ती है और औसत से कम आए तो अकाल की परछाइयां देखने में आती हैं। मौसम मापक यंत्रों की गणना के अनुसार यदि नब्बे फीसद से कम बारिश होती है तो उसे कमजोर मानसून कहा जाता है। छियानबे से एक सौ चार फीसद बारिश को सामान्य मानसून कहा जाता है। यदि बारिश एक सौ चार से एक सौ दस फीसद होती है तो इसे सामान्य से अच्छा मानसून कहा जाता है। इससे ज्यादा बारिश अधिकतम मानसून कहलाती है। भारतीय मौसम विभाग की भविष्यवाणियां अक्सर गलत साबित होती हैं, इसलिए स्काईमेट के अनुमान सटीक बैठेंगे यह कहना भी मुश्किल है। पिछले साल मौसम विभाग और स्काईमेट ने अच्छी बारिश की भविष्यवाणियां की थीं, लेकिन इसी के समांतर बादलों के छीजने की भविष्यवाणी करके यह आशंका भी जता दी थी कि वर्षा कम भी हो सकती है। नतीजतन, बारिश तो अच्छी हुई, लेकिन कुछ राज्यों में सिमट जाने के कारण बाढ़ और भूस्खलन का कारण भी बनी। केरल, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड अतिवृष्टि से बेहाल हुए। वहीं महाराष्ट्र, तमिलनाडु और कर्नाटक में कम बारिश हुई।

पिछले दस साल के आंकड़ों में एक भी साल भविष्यवाणी सटीक नहीं बैठी। इसलिए मौसम विभाग के अनुमान भी भरोसे के लायक नहीं होते। यदि किसान इन भविष्यवाणियों के आधार पर फसल बोए, तो उसे नाकों चने चबाने पड़ जाएंगे। चूंकि कृषि वैज्ञानिक भी मौसम संबंधी भविष्यवाणी के आधार पर किसानों को फसल उगाने की सलाह देते हैं, लिहाजा उनकी सलाह भी किसान की उम्मीद पर पानी फेरने वाली ही साबित होती हैं। देश में कुल खाद्य उत्पादन का लगभग चालीस फीसद इसी बरसात पर निर्भर है। इसी मानसून का कुल बारिश में अस्सी फीसद योगदान रहता है। हैरानी इस बात पर भी है कि मौसम संबंधी अनेक उपग्रह अंतरिक्ष में पिछले पांच साल के भीतर स्थापित किए गए हैं, इसके बावजूद शत-प्रतिशत भरोसे की भविष्यवाणी नहीं हो पा रही है।

आखिर हमारे मौसम वैज्ञानिकों के पूर्वानुमान आसन्न संकटों की क्यों सटीक जानकारी देने में खरे नहीं उतरते? क्या हमारे पास तकनीकी ज्ञान अथवा साधन कम हैं, अथवा हम उनके संकेत समझने में अक्षम हैं? मौसम वैज्ञानिकों की बात मानें तो जब उत्तर-पश्चिमी भारत में मई-जून तपते हैं और भीषण गर्मी पड़ती है तब कम दबाव का क्षेत्र बनता है। इस कम दबाव वाले क्षेत्र की ओर दक्षिणी गोलार्ध से भूमध्य रेखा के निकट से हवाएं दौड़ती हैं। इस तरह दक्षिणी गोलार्ध से आ रही दक्षिणी-पूर्वी हवाएं भूमध्य रेखा को पार करते ही पलट कर कम दबाव वाले क्षेत्र की ओर गतिमान हो जाती हैं। ये हवाएं भारत में प्रवेश करने के बाद हिमालय से टकरा कर दो हिस्सों में विभाजित होती हैं। इनमें से एक हिस्सा अरब सागर की ओर से केरल के तट में प्रवेश करता है और दूसरा बंगाल की खाड़ी की ओर से प्रवेश कर ओड़िशा, पश्चिम-बंगाल, बिहार, झारखंड, पूर्वी उत्तर-प्रदेश, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा और पंजाब तक बरसता है। अरब सागर से दक्षिण भारत में प्रवेश करने वाली हवाएं

आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश और राजस्थान में बरसती हैं। इन मानसूनी हवाओं पर भूमध्य और कैस्पियन सागर के ऊपर बहने वाली हवाओं के मिजाज का प्रभाव भी पड़ता है। प्रशांत महासागर के ऊपर प्रवाहमान हवाएं भी हमारे मानसून पर असर डालती हैं। वायुमंडल के इन क्षेत्रों में जब विपरीत परिस्थिति निर्मित होती हैं तो मानसून के रुख में परिवर्तन होता है और वह कम या ज्यादा बरसात के रूप में धरती पर गिरता है।

महासागरों की सतह पर प्रवाहित वायुमंडल की हरेक हलचल पर मौसम विज्ञानियों को इनके भिन्न-भिन्न ऊंचाइयों पर निर्मित तापमान और हवा के दबाव, गति और दिशा पर निगाह रखनी होती है। इसके लिए कंप्यूटरों, गुब्बारों, वायुयानों, समुद्री जहाजों और रडारों से लेकर उपग्रहों तक की सहायता ली जाती है। इनसे जो आंकड़े इकट्ठे होते हैं उनका विश्लेषण कर मौसम का पूर्वानुमान लगाया जाता है। भारत में मौसम विभाग की बुनियाद 1875 में रखी गई थी। आजादी के बाद से मौसम विभाग में आधुनिक संसाधनों का निरंतर विस्तार होता रहा है। विभाग के पास साढ़े पांच सौ भू-वेधशालाएं, तिरसठ गुब्बारा केंद्र, बत्तीस रेडियो पवन वेधशालाएं, ग्यारह तूफान संवेदी व आठ तूफान सचेतक रडार और आठ उपग्रह चित्र प्रेषण एवं ग्राही केंद्र हैं। इसके अलावा वर्षा दर्ज करने वाले पांच हजार पानी के भाप बन कर हवा होने पर निगाह रखने वाले केंद्र, दो सौ चौदह पेड़-पौधों की पत्तियों से होने वाले वाष्पीकरण को मापने वाले यंत्र, अड़तीस विकिरणमापी एवं अड़तालीस भूकंपमापी वेधशालाए हैं। लक्षद्वीप, केरल व बंगलुरु में चौदह मौसम केंद्रों के डेटा पर सतत निगरानी रखते हुए मौसम की भविष्यवाणियां की जाती हैं। अंतरिक्ष में छोड़े गए उपग्रहों से भी सीधे मौसम की जानकारियां सुपर कंप्यूटरों में दर्ज होती रहती हैं।

दुनिया के किसी अन्य देश में मौसम इतना विविध, दिलचस्प, हलचल भरा और प्रभावकारी नहीं है जितना कि भारत में है। इसका मुख्य कारण है भारतीय प्रायद्वीप की विलक्षण भौगोलिक स्थिति। हमारे यहां एक ओर अरब सागर है और दूसरी ओर बंगाल की खाड़ी। इन सबके ऊपर हिमालय के शिखर हैं। इस कारण देश की जलवायु विविधतापूर्ण होने के साथ प्राणियों के लिए बेहद हितकारी है। इसीलिए पूरी दुनिया के मौसम वैज्ञानिक भारतीय मौसम को परखने में अपनी बुद्धि लगाते रहते हैं। इतने अनूठे मौसम का प्रभाव देश की धरती पर क्या पड़ेगा, इसकी भविष्यवाणी करने में हमारे वैज्ञानिक अक्षम रहते हैं। इसका कारण यह माना जाता है कि आयातित सुपर कंप्यूटरों की भाषा 'अलगोरिथम' वैज्ञानिक ठीक से नहीं पढ़ पाते हैं। कंप्यूटर भले ही आयातित हों, लेकिन इनमें मानसून के डाटा के लिए जो भाषा हो, वह देशी होनी जरूरी है। हमें सफल भविष्यवाणी के लिए कंप्यूटर की देशी भाषा विकसित करनी होगी, क्योंकि अरब सागर, बंगाल की खाड़ी और हिमालय भारत में हैं, न कि अमेरिका अथवा ब्रिटेन में। जब हम वर्षा के आधार स्रोत की भाषा पढ़ने व संकेत परखने में सक्षम हो जाएंगे तो मौसम की भविष्यवाणी भी सटीक बैठेगी। स्काईमेट के पास भी न तो भारतीय भौगोलिक स्थिति के अनुसार सॉफ्टवेयर हैं और न ही अपनी भाषा है। ऐसे में उसकी भी आयातित कंप्यूटरों पर निर्भर रहने की मजबूरी है।

मर्यादा की जुबान

विप्रम

दुनिया मेरे आगे

संभव है कि हथियार के वार से कोई मरने से बच जाए, लेकिन कई बार शब्द बड़े मारक होते हैं और इनकी मार से बचना मुश्किल हो जाता है। इनकी मार इतनी घातक होती है कि शर्मदार व्यक्ति पानी मांगने की हालत में भी नहीं होता। 'साला' एक संबोधन है। किसी-किसी का तकिया कलाम भी। लेकिन पता नहीं क्यों हम भूल जाते हैं, यह एक रिश्ते का द्योतक भी है। फिर भी, न जाने क्यों हमें इससे बहुत चिढ़ होती है। ऐसा कहने वाले अपने इस कहन में भूल जाते हैं छोटे-बड़े का लिहाज। बस एक सनक रहती है कि कह दो! कुछ लोग तो 'साला' या 'साली' के साथ-साथ बहन-बेटी-मां के शुरुआती शब्दों से अंत बड़े ही घृणित शब्दों से करते हैं। ऐसे में ये सर्वव्यापी क्रिया-विषेषण बड़े ही सोचनीय हो जाते हैं।

एक शब्द और चलन में सुनने को मिलता है- 'यार'! यह शब्द भले ही बड़ा मिलनसार-सा लगता है उच्चारण करने वालों को। पर कुछ अर्थ में इस पर आपत्ति जताई जाती है। मसलन, किसी जमाने में कहा जाता था कि 'यार तो उसके होते हैं जो यार रखते हैं या रखती हैं!' यह बात अब गुजरे जमाने की हो गई। अब तो क्या स्त्री, क्या पुरुष, हर कोई यार कह रहा है या खुद यार बन रहा है। कहीं कोई संकोच नहीं, न कोई भेद। बड़ी ही सहजता से पुकार दिया जाता है- 'यार'! यहां संदर्भ दोस्ती का होता है।

हमें बड़ा अचरज हुआ था जब हमारे पोते ने एक दिन हमसे कह दिया- 'यार दादू! पिज्जा खिलवा दो ना!' यह फरमाइश सुन कर हम सकते में रह गए। खैर, अपने को संयत कर हमने उसे टोक दिया- 'बेटे! ऐसे नहीं बोलते। यह अच्छी बात नहीं।' हम मन ही मन समझ रहे थे, लेकिन इसमें पोते का क्या दोष! यह तो ऊंचे फ्लैटों में रहने वालों की नई कल्चर या संस्कृति का परिणाम है। नई पीढ़ी की नई उपज है। माता-पिता जो संस्कार अपने बच्चों को दे रहे हैं, उसी का एक ईनाम है। दादा-दादी ने संग-साथ रखा होता तो बहुत-सी परंपराएं तीसरी पीढ़ी को अपने आप सीधे मिल जातीं। कई बार लगता है, खुली हवा का यह खुलापन कहीं किसी बंद गर्द की ओर तो नहीं ले जा रहा?

'दादू! यार तो मम्मा-पापा भी बोलते हैं'! अबोध बालक बता रहा था। उसमें हमें अब पोता नजर नहीं आ रहा था। बल्कि हालात का मारा एक बिगड़ैल दिख रहा था, जिसके पास अपना टच-स्क्रीन मोबाइल है। उस पर हेडफोन लगाए वह जाने क्या-क्या खेलता रहता है। कुछ कहें तो वह सुनता नहीं। कुछ समझाने की चेष्टा करें तो वह परवाह नहीं करता। यह हमारी समझ से परे है। हम उसके पिता के पिता हैं। पता नहीं, अपने पिता के साथ वह क्या करता होगा? खैर! वह जानता है। दादू तो गांव से एक-दो दिन के लिए आए हैं, फिर न जाने कब आएंगे। आज हम सोचते हैं, कहीं हम गलत तो नहीं थे। हमारी विचारधारा कहीं धार पर तो नहीं लग गई है। जबकि हमने सदैव कहा है कि बच्चे जब शादीशुदा हो जाएं, एक-दो बच्चों के मां-बाप बन जाएं, तब ऐसे में उन्हें बात-बेबात टोकना नहीं चाहिए। भला-बुरा वे जानते हैं। सो, सब ठीक करेंगे। चाहे कहीं रहें। अब सोच रहे हैं हम कि ठीक-अठीक, क्या सुंदर है?

एक शब्द बड़ा ही सहज-सरल होता है- धंसाना। यह कभी-कभी चुभने के अर्थ में भी प्रयुक्त किया जाता है। लेकिन बोलचाल में कई बार जब किसी खास मंशा से यह शब्द उच्चारित किया जाता है तो सुनते ही कान खड़े हो उठते हैं। अर्थ जब कहां से कहां पहुंच जाता है, तो यह शब्द ही अमर्यादित लगता है। गहराई में जाने से क्या लाभ! चालू भाषा में समझाने का हमारा कोई उद्देश्य नहीं है और न ही इच्छा। गाली या अश्लील संदर्भों में शरीर के अंगों का नाम लेना कैसे किसी शब्द को घृणित बना देता है, यह हम सब जानते हैं।

दिल्ली के एक इलाके में जहां हम रहते हैं, वहीं नजदीक एक चारदिवारी के भीतर चार सरकारी स्कूल चलते हैं। सुबह वहां लड़कियां और दिन में लड़के पढ़ते हैं। वहीं स्कूल से आते-जाते बच्चों के मुंह से एक अक्षर के हेरफेर के साथ एक विशेष संबोधन सुनने को मिलता है। चालू भाषा में वह शब्द देह-व्यापार में धकेली गई स्त्रियों को अपमानित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। स्त्री के लिए इस शब्द में गहरे पैठे दुख के भाव को समझना मुश्किल नहीं है, फिर भी लोग सरेआम ऐसा बोलते दिख जाते हैं। मगर बच्चे जब इस शब्द के प्रयोग को लेकर सहज हो रहे हैं तो यह गहरी चिंता की बात है कि इस भाषा के जरिए हम किस तरह का समाज बना रहे हैं। भले ही ये कु-बोली हैं, मगर इसमें भाषा का क्या दोष? हम कहेंगे- 'गलत'। भाषा से संस्कृति प्रकट होती है। इससे पता चलता है कि ऐसा बोलने वाले समाज पर किनका आधिपत्य है। हमें अपनी भाषा-बोली में ऐसे अमर्यादित शब्दों से बचना होगा। हम बचेंगे तो बचपन बचेगा। अन्यथा शब्द कब गाली-गोली बन जाएं, कहना कठिन है।

हाशिये पर हिंदी

हाल ही में संघ लोक सेवा आयोग यानी यूपीएससी की परीक्षा के परिणामों ने एक बार फिर हिंदी माध्यम से सफल विद्यार्थियों को सुपर पावर वाले चश्मे और टॉर्च से ढूंढ़ने के लिए बाध्य किया है। हो सकता है कि कुछ तथाकथित विद्वान इस बात को झुठला दें और कहें कि ज्ञान का कोई माध्यम नहीं होता, और भला आयोग हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों को हीन भाव से क्यों देखेगा! लेकिन हकीकत यही है कि आयोग की नजरों में हिंदी माध्यम के विद्यार्थी आर्थिक, सामाजिक व शैक्षणिक तीनों ही दृष्टियों में पिछड़े हैं। उसकी नजर में हिंदी ग्रामीण क्षेत्रों या छोटे शहरों के साधारण लोगों और वंचितों की भाषा है जबकि अंग्रेजी अभिजात वर्ग की भाषा है। अंग्रेज भारत छोड़ कर चले गए लेकिन अपनी औपनिवेशिक मानसिकता को इन तथाकथित विद्वानों के दिमागों में बो गए। जिन प्रदेशों में हिंदी भाषा बोली जाती है उनमें अधिकतर की अर्थव्यवस्था का आधार कृषि है और यह मामला न सिर्फ हिंदी बनाम अंग्रेजी माध्यम का है बल्कि यह सूट-बूट बनाम धोती-कुर्ता (किसान) भी है।

गौरतलब है कि हिंदी माध्यम के उद्धार के लिए बहुत-सी कोचिंग संस्थाएं देश के विभिन्न शहरी क्षेत्रों में अपने को हिंदी का पालनहार बताते हुए करोड़ों रुपए का व्यवसाय मुख्यतः मध्यम वर्ग के आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों के बूते करती हैं जिनके अभिभावक या तो कृषक हैं या किसी प्राइवेट कंपनी के मजदूर। यह है शिक्षा का व्यवसायीकरण, और इसके लिए चाहिए ही क्या- 10 टेबल, दो शिक्षक, 'हम लेकर आएंगे हिंदी माध्यम का गौरव' जैसी टैगलाइन और कुछ झूठे चयन के दावे! काश हमारी सरकारें शिक्षा की गुणवत्ता के लिए कुछ क्रांतिकारी कदम उठातीं ताकि हम जैसे मध्यमवर्गीय छात्र इस कदर कोचिंग संस्थानों पर माथा टेकने न जाते!

अचरज की बात यह है कि जिस प्रतिस्पर्धा में हिंदी माध्यम के छात्र नकारे जा रहे हैं उस आयोग के सदस्य या अध्यक्ष ने कभी प्रशासक के तौर पर देश की शिक्षा व्यवस्था पर कार्य अवश्य किया होगा। वैसे तो प्रशासनिक सेवा की तैयारी करने वाले छात्र हमेशा सकारात्मक ऊर्जा से लबरेज रहते हैं और खुद को बेहतर बनाने एवं सीखने के लिए प्रेरित करते रहते हैं लेकिन यदि जमीन से जुड़े हिंदी माध्यम के छात्रों को इस तरह नकारा जाएगा तो उनके सपने गर्त में चले जाएंगे।

मैकाले की शिक्षा व्यवस्था ऐसे नौकरशाह चाहती रही है जो 'रक्त एवं रंग से भारतीय हों पर अपने विचार, नैतिक मापदंड, प्रज्ञा एवं प्रवृत्ति से अंग्रेज हों'। मैकाले के इन्हीं सपनों की सिद्धि के लिए समर्पित हैं संघ लोक सेवा आयोग के परिणाम।

● *रविसुता पुत्र ऋषभ, रीवा, मध्यप्रदेश*

खैरात के बजाय

आजकल राजनीतिक दल चुनाव जीतने के लिए जनता को अनेक चीजें मुफ्त या खैरात देने की घोषणाएं कर रहे हैं। इससे मेहनतकश करदाताओं को बहुत निराशा होती है और आम लोगों को भी हर चीज मुफ्त पाने की आदत पड़ जाती है। यह सभी के लिए हानिकारक है। देश में काम की कोई कमी नहीं है। कमी सिर्फ नीयत और नीति की ही है। देश में रोजगार से जनसंख्या को भी पारदर्शी तरीके से जोड़ कर इस बड़ी समस्या को हल किया जा सकता है जिससे राष्ट्र और आगे बढ़ सकता है। दुर्भाग्य यही है कि कोई पार्टी ऐसा सोच ही नहीं रही है।

● *वेद मामूरपुर, नरेला, नई दिल्ली*

मनरेगा में सुधार

अनेक बुद्धिजीवियों द्वारा 'गेम चेंजर' तक बताई जा रही मनरेगा योजना के क्रियान्वयन के अव्यावहारिक प्रावधानों की ओर किसी का ध्यान नहीं जा रहा है। आज बाजार में अकुशल मजदूर की दिहाड़ी प्रतिदिन 250 से 300 रुपए तक है लेकिन मनरेगा में यह महज 170 से 180 रुपए प्रतिदिन है। लगभग 100 रुपए कम दिहाड़ी पर कोई मजदूर क्यों काम करेगा? फिर मनरेगा में मजदूरी का भुगतान आदर्श स्थिति में तमाम औपचारिकताओं के बाद कम से कम आठ से दस दिन बाद बैंक खाते में हो पाता है जबकि मजदूर रोजाना नकद मजदूरी चाहता है। उसे रोज किराना या अन्य आवश्यक चीजों के लिए पैसे चुकाने पड़ते हैं।

दूसरा, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के कारण सैकड़ों गांव पक्की सड़कों से शहर या कस्बे से जुड़ गए हैं। ऐसे में ग्रामीण मजदूर आसानी से शहरों में चले जाते हैं जहां उन्हें मनरेगा से ज्यादा और नकद मजदूरी मिलती है। ऐसे में मनरेगा का औचित्य क्या है? इसके अलावा ग्राम पंचायत के ही पंजीकृत मजदूरों से उसी पंचायत में काम कराने की अनिवार्यता के कारण अनेक पंचायतों में लाखों रुपए होने के बाद भी निर्माण कार्य नहीं हो पा रहे हैं। लिहाजा, आवश्यकता इस बात की है कि मनरेगा का पुनर्मूल्यांकन कर उसे ऐसे जनपदों में लागू किया जाए जहां आवागमन की सुविधा न हो और वे शहरों से न जुड़े हों। शहरों से जुड़ी ग्राम पंचायत को मनरेगा से मुक्त करना चाहिए।

● *मिलिंद रोंघे, महर्षिनगर, इटारसी*

मौत के गड्ढे

सर्वोच्च न्यायालय का स्पष्ट आदेश है कि किसी भी व्यक्ति को बोरवेल खोदने से पंद्रह दिन पूर्व उस जिले के डीएम या संबंधित अधिकारी को सूचना देनी होगी और बोरवेल को चारों तरफ कंटीले तार से घेरने के साथ उसके सुराख को 30 सेंटीमीटर मोटे ढक्कन से पूरी तरह ढकना होगा ताकि उसमें कोई बच्चा न गिरे। फिर भी इस नियम की जम कर अवहेलना हो रही है जिससे अनेक बच्चों की खुले बोरवेल में गिर कर मौत हो चुकी है। इस लापरवाही के चलते सेना, पुलिस के जवानों, इंजीनियरों और मजदूरों के हजारों श्रम दिवस बर्बाद होने के अलावा लाखों रुपए उन बच्चों को बचाने में की गई खुदाई और अन्य आवश्यक उपकरणों आदि के उपयोग पर खर्च हो जाते हैं ।

बोरवेल में छोटे बच्चों के गिरने की आशंका सदा बनी रहती है। उसे एकदम खुला छोड़ देना घोर आपराधिक कृत्य है। बोरवेल को चारपाई, तखत, लकड़ी की चौकी या बांस की जाली से ढक कर उसमें बच्चों को गिरने से बचाया जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट के निर्देश की अवहेलना करने वाले बोरवेल मालिकों के खिलाफ कठोर कानूनी कार्रवाई मसलन, बच्चे की जानबूझ कर हत्या का आपराधिक मुकदमा चलाकर उन्हें कम से कम तीन महीने की जेल और 50 हजार रुपए जुर्माने की सजा तो दी ही जानी चाहिए। तभी इस स्थिति में सुधार हो सकता है।

● *निर्मल कुमार शर्मा, गाजियाबाद*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com